International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में धर्म शास्त्रीय पुनरुत्थान का अध्ययन

Mukesh Chandra
Research Scholar Sunrise University Alwar
Dr. Sheshlata Yadav
Associate Professor, Sunrise University Alwar

सारांश

प्राचीनकाल में रचित शास्त्रीय ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी जा रही थीं। चूँकि राजनीतिक दृष्टि से यह पराजय का युग तो था ही। ऐसे युग में नवीन शास्त्रीय विचारों का सृजन संभव न हो सका। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि – ''भारतवर्ष की असफलता की करुण कहानी से इस युग के इतिहास का अध्याय का अध्याय भरा पड़ा है।''1 उपर्युक्त कथन इस बात की ओर इंगित करता है कि जो युग आत ंक और संत्रास से गुजर रहा हो उसमें नवीन चिन्तन प्रधान सृजन कैसे हो सकते थे? इतना अवश्य था कि जो चिन्तन प्रधान रचनाएँ आरम्भ में हो चुकी थीं उन पर कुछ विचार–विमर्श हो सकता था। मध्यकाल की ये दो शताब्दियाँ (15वीं और 16वीं) भारत की आगामी शताब्दियों का परिणाम है। यदि 15वीं–16वीं शताब्दी को इतिहास से हटा दिया जाय तो साहित्य और इतिहास दोनों के यहाँ से चिन्तन स्वयं हट जायेगा। परवर्ती हिन्दुस्तान जिन रचनाकारों के चिन्तन का परिणाम है उनमें – रामानन्द, बल्लभ, चैतन्य, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, दादू, नरसी मेहता, तुकाराम आदि हैं। चूँकि हमारे धर्मशास्त्र देववाणी (संस्कृत) में लिखे गए थे। 15वीं और 16वीं शताब्दी तक आते–आते भाषायी परिवर्तन होना तय था। जनमानस में लोकभाषा का प्रभाव अधिक था। देववाणी को तत्कालीन विद्वान् या चिन्तक ही प्रयोग में लाते थे। इन्हीं चिन्तकों और विद्वानों की देन है, जो देववाणी में रचे गए धर्मशास्त्रों पर टीकाएँ लिखी गयीं। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है – ''हिन्दू धर्म के शास्त्र संस्कृत–भाषा में लिखे गए हैं।

मुख्यशब्द– गोस्वामी तुलसीदास, धर्म शास्त्रीय पुनरुत्थान, शास्त्रीय ग्रन्थ, शास्त्रीय विचार

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास स्मार्त भावना से प्रभावित थे। उनकी दृष्टि धर्म के प्रमुख रूपों मानवधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, राजधर्म और स्त्रीधर्म पर टिकी थी। वे समझते थे कि इनके समुचित परिपालन पर ही समाज का कल्याण निर्भर है। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में हिन्दू धर्म संकुचित हो रहा था। ऐसे समय में गोस्वामी तुलसीदास डूबते हुए धर्मशास्त्र की ओर दृष्टिपात किए जिसका परिणाम था श्रीरामचरितमानस जैसे महान् ग्रन्थ की रचना। अपने समय में हो रहे धर्म की हानि को देखकर गोस्वामी तुलसीदास बहुत क्षुब्ध थे। उनकी क्षुब्धता का परिणाम था 'कालिकाल वर्णन' का प्रसंग। शास्त्र की क्षीण होती दशा को देखकर शास्त्र तत्त्व को बचाने के लिए वे शास्त्रसम्मत विचारों को रचना का आधार बनाते हैं। इनकी रचना में चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का आगम धर्मशास्त्र और स्मृतियों से हुआ है। मनुष्य का जन्म, विवाह संस्कार, राज्याभिषेक, अन्त्येष्टि आदि प्रसंगों में महाकावि गोस्वामी तुलसीदास जिन विधि–विधानों के अनुरूप वर्णन करते हैं, उनके स्रोत धर्मशास्त्र और स्मृति ग्रन्थ ही है। यज्ञ और तपस्या का वर्णन भी इसी पर आधारित है। पुत्र जन्मोत्सव का वर्णन भी गोस्वामी तुलसीदास शास्त्राधारित करते हैं। शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में पुत्र का जन्म, लोक में आनन्द की लहर, चूँकि रामजन्मोत्सव (ब्रह्म अवतारोत्सव) है इसलिए देवताओं द्वारा पुष्प वर्षा एवं दुन्दुभी–वादन भी हो रहा है, माता–पिता आदि का विशेष हर्षित होना, वेदविहित क्रियानुसार संस्कारादि का सम्पादन, वेदेध्वनि, बधाई का बजना, चीर आदि का लुटाया जाना, विविध वस्तुओं का दान, सोहर का गाया जाना, रनिवास में प्रसन्नता, मागध, स ूत, भाट, नट,

याचक को अभीष्ट वस्तु मिलना, लोकरीतियों का सम्पादन, छठीं का उत्सव, न्यौछावर बँटना आदि कुछ ऐसे अभिप्राय हैं जिनका वर्णन राम जन्मोत्सव के प्रसंग में तुलसीदास ने किया है। गोस्वामी तुलसीदास अपनी सृजनशक्ति के द्वारा गीतावली, बालकाण्ड (बधाई) में इन शास्त्रीय विधि–विधानों को वर्णित करते हैं जो दृष्टव्य हैः–

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई।

रूप–सील–गुन–धाम राम नृप–भवन प्रगट भए आई।।1।।

अतिपुनीत मधुमास, लगन–ग्रह–बार–जोग समुदाई।

हरषवन्त चर–अचर, मूमिसुर–तनरूह पुलक जनाई।।2।।

बरषहिं बिबुध–निकर कुसुमावलि, नभ दुन्दुभी बजाई।

कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई।।3।।

सुनि दसरथ सुत–जनम लिजए सब गुरुजन विप्र बा`लाई।

बेद–बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनन्द उर न समाई।।4।।

सदन बेद–धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई।

पुरबासिन्ह प्रिय–नाथ–हेतु निज–निज सम्पदा लुटाई।।5।।

मनि–तोरन, बहु केतुपताकनि, पुरी रुचिर करि छाई।

मागध–सूत द्वार बन्दीजन जहँ–तहँ कर बड़ाई।।6।।

सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल विपुल बनाई।

गावहिं देहिं असीस मुदित, चिर जिवौ तनय सुखदाई।।7।।6

अर्थात् आज बड़ा म`गलमय दिन है, आज की शुभघड़ी बड़ी सुहावनी है। आज सौन्दर्य, शील, गुणों के आगार भगवान् राम महाराज दशरथ के भवन में प्रकट हुए है`।।1।। अति पवित्र चैत्र मास है तथा लग्न, ग्रह, वार और योग– इन सबका समुदाय भी परम पावन है। चराचर प्राणी बडे हर्षयुक्त हैं तथा ब्राह्मणों के शरीर में रोमांच हो रहा है।।2।। देववृन्द आकाश में दुन्दुभी बजाते हुए पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं तथा कौसल्या आदि माताओं का मन बड़ा ही हर्षित हो रहा है। हमसे इस सुख का वर्णन नहीं हो पा रहा है। दशरथ जी ने पुत्र का जन्म होता सुनकर समस्त गुरुजन और विप्रवृन्दों को बुला लिया है और बड़ी पवित्रता से सम्पूर्ण वेदविहित क्रियाएँ की हैं। इस समय उनके हृदय में आनन्द अँटता नही है।।4।। महल में मुनि सुमधुर वेद–ध्वनि कर रहे हैं। तरह–तरह की बधाइयाँ बज रही हैं। पुरवासियों ने भी अपने परमप्रिय नाथ के लिए अपनी–अपनी सम्पत्ति लुटा दी है।।5।। मणियों का तोरण और बहुत–सी ध्वजा–पताकाओं से पुरी (अवध) को बड़ी सुन्दरता से छा दिया है। द्वार पर जहाँ–तहाँ मागध, सूत और बन्दीजन बड़ाई कर रहे हैं।।6।। पुरनारियाँ अपनास्वाभाविक श्रृंगार करके तरह–तरह की मंगल सामग्री लिए चली आ रही हैं। वे गीत भी गा रही हैं और प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद देती हैं कि यह सुखदायक बालक चिरजीवी हो।।7।। गोस्वामी तुलसीदास उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर शास्त्रमत को मजबूत करते हुए भारतीय हिन्दू लोकमत को भी सुदृढ़ करते हैं। मंगलगीत की जो अवधारणा धर्मशास्त्र एवं स्मृति ग्रन्थों में विवाहादि संस्कार के अन्तर्गत दिखायी देता है उसका पूर्ण अनुकरण गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी लगभग सभी रचनाओं में करते हैं। जन्म का उपर्युक्त वर्णन पुंसवन संस्कार के अन्तर्गत आता है। डॉ0 पाण्डुरंग वामन काणे जातकर्म के सन्दर्भ में लिखते हैं– ''जातकर्म के विस्तार के विषय में गृह्यसूत्रों में बहुत भिन्नताएँ पायी जाती हैं। कुछ गृहसूत्रों में उपर्युक्त सातों बातों की और कुछ में दो–एक कम की चर्चा हुयी है। विभिन्न शाखाओं के अनुसार वैदिक मन्त्रों में भी भेद पाया जाता है।''7 डॉ0 काणे उपर्युक्त कथन का

विश्लेषण करते हुए कहते हैं– ''वृहदारण्यकोपनिषद् में जातकर्म संस्कार के निम्नलिखित भाग हैं– (1) दही एवं घृत का मन्त्रों के साथ होम; (2) बच्चे के दाहिने कान में 'वाक्' शब्द को तीन बार कहना; (3) सुनहले चम्मच या शलाका से बच्चे को दही, मधु या घृत चटाना; (4) बच्चे को एक गुप्त नाम देना (नामकरण); (5) बच्चे को माँ के स्तन पर रखना; (6) माता को मन्त्रों द्वारा सम्बोधित करना। शतपथ ब्राह्मण में एक और बात जोड़ दी गयी है; यथा– पाँच ब्राह्मणों द्वारा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊपर की दिशाओं से बच्चे के ऊपर साँस लेना। यह कार्य केवल पिता ही कर सकता है।''8 जातकर्म संस्कार को लेकर कुल मिलाकर उपर्युक्त सात शास्त्रीय नियम बनाये गये। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखने पर पता चलता है कि ये संस्कार ग्रामीण संस्कृति में आज भी देखने को मिलते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास को जो संस्कार सबसे रुचिकर लगा है, वह 'विवाह–संस्कार' है। विवाहोत्सव के वर्णनों में लोक प्रचलित रीतियों का वर्णन होता है। चूँकि विवाह संस्कार जीवन का एक रमणीय प्रसंग है इसलिए अन्य कवियों की भाँति गोस्वामी तुलसीदास भी इसमें खूब रमे हैं। ''तुलसी–काव्य में यद्यपि कुल मिलाकर 5 विवाह वर्णित हैं, लेकिन उत्सव वर्णन के रूप में इसे दो ही कहना उचित प्रतीत होता है–

(1) शिव–पार्वती का विवाह

(2) राम–सीता का विवाह

राम सीता विवाह के साथ–साथ राम के भाइयों, लक्ष्मण–उर्मिला, भरत–माण्डवी एवं शत्रुघ्न–श्रुतिकीर्ति के विवाह की सूचना मात्र दी गयी है। विवाहोत्सव के विस्तृत वर्णन का मुख्य आधार तो राम–सीता का विवाह ही है। उपर्युक्त विवाहों की चर्चा तुलसी के निम्नालिखित ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं:–

(1) शिव–पार्वती का विवाह – रामचरितमानस और पार्वतीमंगल में

(2) राम–सीता का विवाह – रामचरितमानस, जानकीमंगल और गीतावली तथा रामललानहछू में।

उपर्युक्त रचनाओं में विवाह–संस्कार का शास्त्रविधि से वर्णन किया गया है। तोरण–ध्वजा, वितान आदि की रचना, बारात का प्रस्थान, अगवानी, जनवास (जहाँ बाराती रात में निवास करते हैं) का सुन्दर वर्णन, परिछन, लोक–वेद आचार, दान–दहेज का वर्णन, जेवनार (भोजन के अवसर पर मांगलिक गीत– 'गाली' का वर्णन), पान एव ं विदाई के समय कन्या को माँ की सीख आदि बातों का सुन्दर वर्णन है। बारात के लिए ऐसी सुन्दर व्यवस्था मिथिला नरेश करते हैं कि सारे बाराती उक्त सुख के आगे अपने–अपने घर तक भूल जात ` हैं। मानस का एक वर्णन दृष्टव्य हैः–

असन सयन बर बसन सुहाए।

पावहिं सब निज–निज मनभाए।।9

नित नूतन सुख लखि अनुकूले।

सकल बरातिन्ह मन्दिर भूले।।

अर्थात् जहाँ बारात के सब लोग अपनी–अपनी पस ंद के अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, विस्तर और वस्त्र पाते हैं। मन के अनुकूल नित्य नये सुखों को देखकर सभी बारातियों को अपने घर भूल गए। बारातियों के सन्दर्भ में आज के प्रासंगिक तौर पर देखा जाय तो जहाँ उस समय के बाराती 'बारात–व्यवस्था' के उस सुख में अपना घर भूल गए, किन्तु आज के बाराती जैसे ही गेस्ट हाउस में पहुँचते हैं, एक–दो घण्टे के बाद घर भागने लगते हैं। सुबह होते–होते केवल घर के लोग ही (वर के भैया, चाचा आदि) बचते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार 'दहेज' उस समय भी प्रचलन में था। तुलसी ने दहेज का जो वर्णन किया है इससे पता चलता है

कि उस समय का दहेज भी कुछ इस तरह थाः–

जसि रघुबीर ब्याह विधि बरनी।

सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी।।

काहि न जाई कछु दाइज भूरि।

रहा कनक मनि मंडपु पूरी।।

अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गयी है, उसी रीति से सब राजकुमार विवाहे गये। दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती; सारा मण्डप सोने और मणियों से भर गया।

गोस्वामी जी आगे पुनः लिखते है ं–

कंबल बसन बिचित्र पटोरे।

भाँति–भाँति बहु मोल न थोरे।।

गज रथ तुरग दास अरु दासी।

धेनु अलंकृत कामदुहा सी।।10

अर्थात् बहुत से कम्बल, वस्त्र और भाँति–भाँति के विचित्र रेशमी कपडे, जो थोड़ी कीमत के न थे (अर्थात् बहुमूल्य थे) तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास–दासियाँ और गहनों से सजी हुई कामधेनु–सरीखी गायें।

वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा।

काहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा।।

लोकपाल अवलोकि सिहाने।

लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने।।11

मध्यकाल में धर्म शास्त्रीय पुनरुत्थानः

मध्यकाल व्यवस्था के आधार पर सामन्तवाद आधारित युग है। यह एक ऐसा युग है जहाँ सामन्ती मूल्य, मर्यादा के बन्धन शिथिल न होकर, दृढ़तर होते जा रहे थे। यही एक ऐसा युग भी था जहाँ विचारों को दबाया जा रहा था। कुछ विद्वानों को छोड़ दिया जाय तो अधिकांश आचार्य और विद्वान् स्वतंत्रतापूर्वक कुछ नया सृजन नहीं कर पा रहे थे। ये केवल अपने पूर्वजों द्वारा सृजित किए गए तथ्यों में से तथ्य निकाल रहे थे और उसे व्याख्यायित कर रहे थे। मध्यकाल में शास्त्र का (वेदशास्त्र का) भाष्यीकरण हो रहा था। 15वीं–16वीं शताब्दी को शास्त्रों के भाष्य या टीका का युग कह सकते हैं। मुसलमानों के आगमन के पहले भी सैकड़ों जातियाँ इस देश में आकर हिन्दू धर्म का कवच पहन चुकी थीं। नयी–नयी जातियों के आने से नयी–नयी समस्याएँ खड़ी होती गयीं और हिन्दू शास्त्रकारों ने नयी–नयी स्मृतियाँ और नये–नये पुराण रचकर इन समस्याओं को हल करने की चेष्टा की थी।''2 यह था तद्युगीन चिन्तन का वास्तविक स्वरूप। नयी–नयी जातियों के आने से नयी–नयी समस्याएँ (धर्मगत, जातिगत, व्यवहारगत, विचारगत आदि) आना तो तय थीं। इन्हीं समस्याओं के निराकरण हेतु हिन्द शास्त्रकारों ने नवीन शास्त्र रचने की चेष्टा की, यह चेष्टा मध्ययुग से पहले था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पुनः लिखते हैं– ''हिन्दू–जाति में–जहाँ तक शास्त्रों का सम्बन्ध था – मौलिकता बच नहीं रही थी। पर परम्परा की एकान्तप्रेमी सभ्यता होने के कारण वह शास्त्रों को फेंक भी नहीं सकती थी। इस विकट युग में कुछ शास्त्रकारों ने पुरानी स्मृतियों और पुराने पुराणों के स्तूपीभूत संग्रह से कालधर्म की उपयोगिनी विधि–व्यवस्थाओं की खोज शुरू की। स्मृतियों पर नयी–नयी टीकाएँ लिखी गयीं, नये–नये व्यवस्थाशास्त्र रचे गए और नये–नये पुराणग्रन्थ भी बनाए गये।''3 स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य द्विवेदी आगे लिखते हैं – ''मनु के टीकाकार मेघातिथि और कुल्लूक भट्ट, मिताक्षरा टीका लिखने वाले विज्ञानेश्वर, चतुर्वर्गचिन्तामणिकार हेमाद्रि, बंगाल के रघुनन्दन, काशी के कमलाकर आदि बड़े–बड़े आचार्यों ने इस काम में हाथ लगाया।''4 आचार्य द्विवेदी के उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि टीकाकारों और भाष्यकारों ने टीकाएँ और भाष्य लिखकर तद्युगीन शास्त्रीय पुनरुत्थान किया। ऐसी बात नहीं थी कि ये टीकाएँ और भाष्य केवल स्मृति और पुराण पर ही लिखे जा रहे थे; बल्कि वेदान्त (उपनिषद् आदि) न्याय, व्याकरण, मीमांसा, ज्योतिष और वैद्यक आदि शास्त्रों पर भी लिखे जा रहे थे। चूँकि हिन्दी साहित्य का भक्तिकाव्य संस्कृत साहित्य के वेदान्त का

ऋणी है इसलिए वेदान्त पर लिखी गयी टीकाएँ भक्तिकालीन रचनाकारों की रचनाओं में अपने प्रभाव की छाप छोड़ती है। सूर, कबीर, तुलसी, मीरा, रसखान जो भी हों सबके काव्य दर्शन में कहीं न कहीं वेदान्त प्रभावी है। मध्ययुगीन टीकाओं एवं टीकाकारों की बहुलता को देखकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी यह कहने के लिए विवश हो जाते हैं– 'राशि–राशि स्मृतियों और पुराणों के उद्धरण दे–देकर व्याख्याकारों ने हिन्दू संस्कृति के वास्तविक रूप को बचाये रखने की कोशिश की। इस प्रयत्न को देखकर उस युग की विकट समस्या का अनुमान होता है। सभी विद्वान् मानो हिन्दू शास्त्रों की सारी शक्ति समेटकर विदेशी शक्ति का सामना करने को तत्पर हैं।''5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दर्शन से राजनीति को कैसे चुनौती दी जाती है। एक तरफ सांस्कृतिक टकराहट राजनीतिक संघर्ष के सहारे प्रबल हो रही थी और दूसरी तरफ शास्त्रज्ञ व्याख्याकार अपनी चिन्तन धारा को मजबूती प्रदान कर रहे थे। गोस्वामी तुलसीदास सनातन धर्म से परिपूरित भक्त रचनाकार थे। इसीलिए इनकी रचनाएँ सनातन परम्परा को ग्रहण करके आगे बढ़ती है। लोक मर्यादा की सृष्टि एवं उसको जनमानस तक सम्प्रेषित करने का कार्य गोस्वामी जी ने सनातन धर्म के अन्तः एवं वाह्य प्रभावों से ग्रहण किया। वे एक ऐसी धर्म परम्परा (सनातन) से जुडे थे जहाँ भक्ति–चिन्तन, आस्था–श्रद्धा, श्रेय–प्रेय, आचार–व्यवहार, न्याय–विधि, समाज–व्यवस्था आदि सभी बातों का अन्तर्भाव है।

युग की पीड़ा और संत्रास :–

कलिकाल का वर्णन श्रीरामचरितमानस के अतिरिक्त कवितावली और विनयपत्रिका में भी हुआ है। इनमें पारम्परिक कलिकाल का वर्णन ही नहीं है, बल्कि समसामयिक समाज की दुर्गति का भी चित्रण है। मध्यकाल की त्रासदी जिस रूप में दिखायी देती है, वही कलिकाल का वास्तविक रूप है। 'कलिकाल' की त्रासद् भरी कहानी रामराज्य की कल्पना के लिए प्रेरित करती है। गोस्वामी तुलसीदास से पहले वाल्मीकि आदर्श रामराज्य का वर्णन कर चुके थे। रामराज्य की परिकल्पना का आधार त्रेतायुग है। तुलसीदास का साहित्य आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप है। यथार्थ कलिकाल के सन्दर्भ में और आदर्श 'रामराज्य की परिकल्पना' के सन्दर्भ में तुलसी साहित्य में दिखायी देता है। तुलसीदास जो भोग रहे थे वही उनका 'कलिकाल' था और जो उनकी एक स्वप्निल दुनिया थी (जो सचमुच उस समय थी नहीं) वही उनका रामराज्य था। तुलसी के सन्दर्भ में रमेश कुन्तल मेघ का कथन है– ''यूँ तत्कालीन समाज मध्यकालीनीकरण का ही एक अंग है। तुलसी की दृष्टि से यह समसामयिक एवं वर्तमान है जिसे उन्होंने एक वैष्णव भक्त की अपनी नज़र से देखा है। यह फ़िरिश्ता, निज़ामुद्दीन मुहम्मद, अब्दुल क़ादिर बदायूँनी और अबुल फ़ज़ल की क़लम का दरबारी करिश्मा न होकर लोकमुख से लिया गया लोकजन का अ–तथ्यात्मक और भावात्मक तथा ब्राह्मण आदर्शों वाला एक इतिहास–संरूप है। यह समाज रामवृत्त के मिथकीय परिवेश से सजा होने पर भी मध्यकालीन आयामों से अधिक गुँथा है।''22 रमेश कुन्तल मेघ का उपर्युक्त कथन मध्यकालीन रचनाशीलता की वास्तविकता की ओर स ंकेत करता है। मध्यकालीन सन्दर्भों में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। मध्यकाल का समाज एक संस्थागत समाज था। कर्मकांड, भक्ति, नाम, धर्म, धन, शक्ति आदि का सम्बन्ध संस्थाओं से था। संस्थाओं की मात्रा और शक्ति दोनों अधिक थी। प्रत्येक समाज के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों एवं समूहों की अपनी–अपनी अलग संस्थाएँ हुआ करती थीं। ये संस्थाएँ एक वर्ग, समुदाय, जाति से दूसरे वर्ग, समुदाय, जाति के लिए भिन्न–भिन्न हुआ करती थीं। कहीं–कहीं इनमें पारस्परिक विरा ेध तो कहीं–कहीं पारस्परिक मेल होता रहता था, जो सांस्कृतिक समन्वय का कारण बनता था। यदि संस्थाओं की संरचनात्मक पहलुओं पर विचार किया जाय तो मध्यकालीन समाज में निम्न प्रकार की संस्थाओं का प्रचलन था– आध्यात्मिक संस्थाएँ, आर्थिक संस्थाएँ, नैतिक तथा धार्मिक संस्थाएँ, राजनीतिक संस्थाएँ, उपयोगितावादी तथा मनोरंजनवादी संस्थाएँ आदि। मध्ययुग शौर्यपूर्ण

गाथाओं का काल रहा है। इस काल में शौर्य और स्पर्द्धा दोनों ही होती है। ये दोनों (शौर्य और स्पर्द्धा) चीजें सामन्त वर्ग से जुड़ी हुयी थीं। सामन्तों एवं राजाओं के पारस्परिक संघर्षों में शक्ति और सम्पदा दोनों का विनाश हो जाता है। चूँकि शक्ति और सम्पदा का ह्रास हो रहा था इसलिए राजा और सामन्त तथा किसान एवं व्यापारी के बीच खाईं गहरी होती जा रही थी। तद्युगीन समाज में साम्प्रदायिक स्पर्द्धाओं (जैन–बौद्ध, ब्राह्मण–शाक्य, हिन्दू–मुस्लिम) एवं जातीय कलह से उत्पन्न इर्ष्याओं (ब्राह्मण–क्षत्रिय, ब्राह्मण–शूद्र, वैश्य–क्षत्रिय) ने अपनी नींव मजबूत कर लिया था। मध्यकालीन शताब्दियों के अधिकांश भाग संघर्षों से भरा हुआ है। साहित्य का सौभाग्य था कि ऐसे समय में गोस्वामी तुलसीदास का आगमन हुआ। तुलसीदास के समय में मुग़ालियत शासन व्यवस्था के दूसरे (हुमायूँ), तीसरे (अकबर), चौथे (जहाँगीर) बादशाह की परम्परा स्थापित हो चुकी थी। चूँकि प्रतिहारों के विनाश से मध्य एशियाई तुर्कों का रास्ता (भारत अभियान के लिए) निष्कंटक हो गया था और विदेशी इस्लामिक परम्परा के भारतीय राजा हिन्दू संस्कृति से प्रभावित भी हो रहे थे। प्रभावित होने की यह प्रक्रिया एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था। दो समाजों तथा दो संस्कृतियों (हिन्दू–मुसलमान एवं इस्लाम–पौराणिक) की सामाजिक अन्तर्क्रिया प्रारम्भ हुई। रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में – ''तुलसी आदि ने साधनों को ही प्रतीक में रूपान्तरित कर दिया है, आध्यात्मिक और धार्मिक संस्थाओं पर ही बल दिया है, वर्ग के स्थान पर वर्ण के कार्यधर्मों को परिनिष्ठता दी है और चरममूल्य के रूप में मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति को प्रतिष्ठित किया है। इनके सामाजिक मूल्यचक्र में अर्थ और काम को सबसे नीचा दर्जा दिया गया है, धर्म का पौराणिक उद्धार हुआ है तथा (भक्तिपरक) मोक्ष हिन्दू संस्कृति का चरम 'प्रतीक' हो गया है।''

मध्यकाल में शास्त्र की प्रतिगामी विचारधारा :

मध्यकाल के जिस दौर में गोस्वामी तुलसीदास शास्त्रसम्मत विचारों एवं सिद्धान्तों को लेकर चल रहे थे, उसी दौर में शास्त्र की प्रतिगामी विचारधारा भी आगे बढ़ रही थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुकूल एवं प्रतिकूल विचारधाराएँ मध्यकाल में स्पष्ट समावेशित हो चुकी थीं। कुलीन संस्कृति के प्रति विद्रोह की भावना वेदान्त युग या उससे पहले भी देखा जा सकता है। लोकायत, चार्वाक, जैन, बौद्ध एवं सिद्ध नाथ योगियों से होती हुयी यह परम्परा कबीर आदि निर्गुण सन्तों के साहित्य में दिखायी देता है। यह विरोध कहीं न कहीं शास्त्र की प्रतिगामी विचारधारा के कारण आगे आया है। यह प्रतिक्रिया पोथी–ज्ञान, वर्णव्यवस्था, तीर्थ–व्रत, मूर्तिपूजा तथा अन्य धार्मिक विधि–विधानों के प्रति व्यक्त हुयी है। भक्ति के इसी स्वरूप को लेकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते है ं। ''भक्तिशास्त्रीय ग्रन्थों में जो अंश और भेद गिनाए गए हैं; वे उपलक्षण–मात्र हैं। वस्तुतः जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है, हरि भी अनन्त हैं उनकी कथा भी अनन्त है और श्रुति तथा संत उसका अनन्त भाव से भजन भी करते हैं।''30 आचार्य द्विवेदी पुनः लिखते हैं– ''सो गुरूपदाश्रय प्रभृति जो भेद भक्ति–शास्त्रों में बताए गए हैं, वे अन्तिम और पूर्ण नहीं है। श्रवण–कीर्तन आदि प्रकार भी उपलक्षणा भर ही हैं। भक्ति के लिए केवल एक ही बात आवश्यक है– अनन्यभाव से भगवान की शरणागति, अहैतुक प्रेम, बिना शर्त आत्मसमर्पण। कबीरदास म ें इन बातो ं की चरम परिणति हुई है।''31 इस प्रकार स े यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति के लिए 'जाति' नहीं भाव की आवश्यकता होती है। वह भी प्रेमभाव की। सरहपा और कण्हपा आदि सिद्धो ं म ें भी 'पाखण्ड–खण्डन' और 'पंथ–पंडित निन्दा' के रूप में कुलीन संस्कृति के द्वारा अपनायी गयी मान्यताओं का मजाक उड ाया गया है। परवर्ती सन्तों ने अभिजात्य स ंस्कृति को नकारा है। जिन्हें कुलीन वर्ग ने सद्गुण कहा है सन्तों ने उसे महज सामाजिक बुराई माना है। ''सन्तों' ने अपनी वाणियों में लूटपाट, लालच और विषयासक्ति की निंदा की है। दान के दाता और ग्रहीता दोनों की निंदा की गयी है। स्वयं दान को अमान्य ठहराया गया है। कहा गया है कि भले ही कोई कितना ही दान करे, भले ही सम्पूर्ण भूमंडल का दान कर दे, लेकिन राम की भक्ति के बिना उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। दान के लिए ब्राह्मणों के लाभ

की भर्त्सना की गई है।''32 ये सन्त तद्युगीन समाज के सच्चे द्रष्टा थे। इनमें कुलीनता में व्याप्त भ्रष्टाचारी के प्रति विद्रोह की जो भावना निहित थी वह उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है; शास्त्र की प्रतिगामी विचारधारा के तहत मध्ययुग में कुलीनतंत्र का जो विरोध हुआ वह कुछ इस प्रकार था– ''सन्तों ने ब्राह्मणों और शासकों के 'देश' और सन्तों के 'देश' के बीच अन्तर स्पष्ट किया। ब्राह्मण के लोक की ये विशेषताएँ बताई गई हैं कि उसमें वेद, निगम, वर्णभेद, धर्म सम्प्रदाय, मुग़ल, पठान, सैयद, शेख, जरा, मृत्यु, कष्ट और शंकाओं का निवास है।

निष्कर्ष:

शास्त्र की प्रतिगामी विचारधारा के तहत ये सन्त देवताओं और शासकों का, चाहे वे पौराणिक रहे हों या ऐतिहासिक, गुणगान नहीं किया वरन् उन्हें असहाय बताया है जो काल के वश में हैं। समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये ये सन्त राजा और रंक दोनों को ही काल के सामने समान बताया। यानी जगत् की नश्वरता पर बल दिया। उन्होंने (सन्तों ने) शास्त्रोल्लिखित अवतारवाद का खण्डन केवल धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त के आधार पर नहीं किया। उसके खण्डन के राजनीतिक ध्वनितार्थ भी थे। ब्राह्मणों ने तद्युगीन सत्ताधारी शासकों को देवताओं का अवतार बताकर उनकी वैधता प्राप्त कर ली। ''जहाँ कबीर और उनके समकालीन सन्तों ने आदिकालीन पौराणिक सन्तों को देवताओं और सम्राटों से श्रेष्ठ माना, वहाँ उनके परवर्ती अनुयायी ऐसे सन्त नायकों की सूची को निरन्तर लम्बा करते रहे और उन्हें और भी ऊँचा दर्जा देने लगे।'' उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में जहाँ एक ओर सगुण भक्तकवि (विशेषकर तुलसीदास) शास्त्र सम्मत विचारों को लेकर काव्य रचना कर रहे थे, उसी युग में निर्गुण भक्त कवियों (विशेषकर कबीर आदि) ने शास्त्र की प्रतिगामी विचारधारा को लेकर काव्य–रचना में प्रवृत्त हुए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

तुलसीदास सं0–डॉ0 वासुदेव सिंह, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, पुनर्मद्रण–2010, पृ0सं0 27,

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 117

तुलसीदास–माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 7वां संस्करण–2005, पृ0सं0 58

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 117

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 118

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 118

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 120

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 120

हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र श ुक्ल, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0 95

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 121

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति–2011, पृ0सं0 121

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति–2011, पृ0सं0 121

तुलसीकाव्य मीमांसा–उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति–2011, पृ0सं0 126

उपर्युक्त वही, पृ0सं0 126

कवितावली–गीताप्रेस गोरखपुर, छन्द सं0 102, पृ0सं0 115

तुलसीदास–माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 7वा ं संस्करण–2005, पृ0सं0 162

हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं0 डॉ0 नगेन्द्र सह–संपादक डॉ0 हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, सेक्टर 5, ना`यडा। 46वाँ पुनमुर्द्रण संस्करण–2014।